R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-17, अङ्क-10 अक्टूबर 2018 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख-समाचार पत्र

मङ्गलायतन

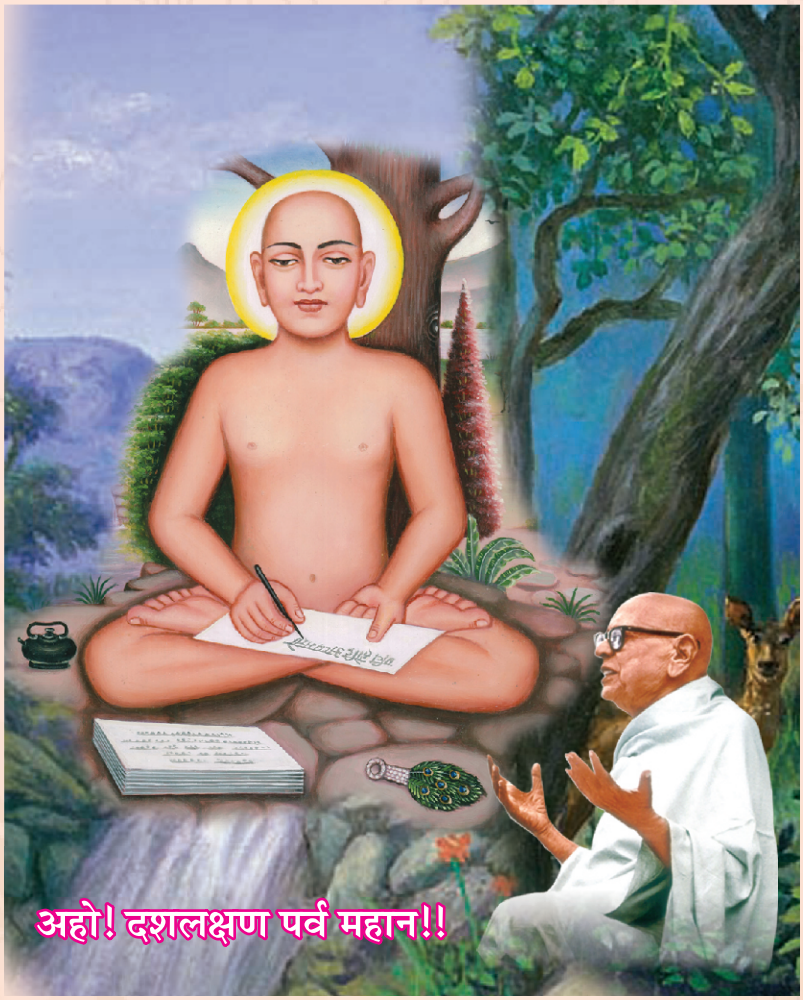

भगवान महावीर निर्वाणोत्सव के पावन अवसर पर तीर्थधाम मङ्गलायतन में

श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ एवं

श्री कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान उज्जैन

के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित

आध्यात्मिक शिक्षण शिविर एवं श्री 170 तीर्थंकर विधान व निर्वाण महोत्सव

सोमवार, दिनांक 05 नवम्बर से, शनिवार, दिनांक 10 नवम्बर 2018

मङ्गल आमंत्रण

सद्धर्मानुरागी बन्धुवर,
सादर जयजिनेन्द्र एवं शुद्धात्म सत्कार!

आपको जानकर हर्ष होगा, वीर जिनेन्द्र के शासन में, कुन्दकुन्दादि दिगम्बर आचार्यों की अनुकम्पा से और पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, तद्भक्त प्रशममूर्ति बहिनश्री चम्पाबेन के प्रभावना योग से तीर्थधाम मङ्गलायतन आप सभी के सहयोग से जिनशासन की आराधना-प्रभावना का महत् कार्य कर रहा है।

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी शासन नायक भगवान श्री महावीरस्वामी के निर्वाण कल्याणक प्रसंग पर तीर्थधाम मङ्गलायतन के सुरम्य वातावरण में **छह दिवसीय आध्यात्मिक शिक्षण शिविर** का आयोजन **सोमवार, दिनांक 05 नवम्बर से शनिवार, दिनांक 10 नवम्बर 2018** तक किया जा रहा है।

इस शिविर में पूज्य गुरुदेवश्री के भवतापहारी सी.डी. प्रवचन, उन्हीं के मार्ग की प्रभावना करनेवाले विद्वानों के स्वाध्याय, पूजन-विधान एवं मङ्गलार्थियों द्वारा तात्विक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये जायेंगे। प्रतिदिन प्रात: 5 बजे से रात्रि 10 बजे तक विभिन्न विद्वानों के माध्यम से 8 से 10 घण्टे तत्त्वज्ञान श्रवण का अपूर्व अवसर प्राप्त होगा।

इस अवसर पर श्री 170 तीर्थंकर विधान एवं कैलाशपर्वत पर कृत्रिम पावापुरी की रचना बनाकर भगवान महावीर का निर्वाण महोत्सव मनाया जायेगा। सभी तत्त्वप्रेमी महानुभावों से निवेदन है धर्म लाभ लेने हेतु शीघ्र ही पत्र या फोन द्वारा सूचना प्रदान करें।

ऐसे दुर्लभ अवसर पर लाभ प्राप्त करने हेतु आप सभी को हमारा भावभीना आमन्त्रण है। कृपया अवश्य पधारकर तत्त्वज्ञान का लाभ अर्जित कीजिए। जैनं जयतु शासनम्।

मुख्य आकर्षण ❀ 170 तीर्थंकर विधान व निर्वाण महोत्सव ❀ पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन ❀ विद्वानों द्वारा विशिष्ट स्वाध्याय ❀ आध्यात्मिक गोष्ठी ❀ श्री आध्यात्मिक भजन सन्ध्या ❀ निर्वाण महोत्सव ❀ आओ चलो मुक्ति की ओर-उज्जैन द्वारा ❀ सांस्कृतिक प्रस्तुति-मङ्गलार्थियों द्वारा ❀ साधर्मी मिलन ❀ मङ्गलायतन दर्शन

आलोकित ज्ञानदीप ❀ पण्डित विमलदादा झाँझरी उज्जैन ❀ ब्रह्मचारी सुमतप्रकाशजी खनियाधाना ❀ पण्डित संजीव गोधा जयपुर ❀ पण्डित प्रदीप झाँझरी उज्जैन ❀ डॉ० अरुणकुमार जैन, जयपुर ❀ पण्डित अरहन्त झाँझरी उज्जैन ❀ पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सचिन जैन, पण्डित संजय शास्त्री, पण्डित सुधीर शास्त्री, पण्डित सचिन्द्र शास्त्री, तीर्थधाम मङ्गलायतन

– निवेदक –

अजितप्रसाद जैन, अध्यक्ष/ स्वप्निल जैन, महासचिव
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.)

प्रदीप झांझरी, अध्यक्ष / नागेश जैन, महासचिव
श्री कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान, उज्जैन (म.प्र.)

सम्पर्कसूत्र एवं कार्यक्रम स्थल

सुधीर जैन शास्त्री, तीर्थधाम मङ्गलायतन, डीपीएस सीनियर विंग के पास, अलीगढ़-आगरा राजमार्ग, सासनी, हाथरस (उ.प्र.)

Mobile : 9997996346, 9756633800 www.mangalayatan.com info@mangalayatan.com

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-18, अङ्क-10 (वी.नि.सं. 2544) अक्टूबर 2018

अध्यात्म-पद

चेतन निज भ्रमतैं भ्रमत रहै ।टेक ॥

आप अभंग तथापि अंग के, संग महा दु:ख (पुँज) बहै ।
लोहपिंड संगति पावक ज्यों, दुर्धर घन की चोट सहै ॥
चेतन निज भ्रमतैं भ्रमत रहै ॥1 ॥

नामकर्म के उदय प्राप्त नर-नरकादिक परजाय धरै ।
तामें मान अपनपौ विरथा, जन्म जरा मृतु पाप डरै ॥
चेतन निज भ्रमतैं भ्रमत रहै ॥2 ॥

कर्ता होय रागरुष ठानै, पर को साक्षी रहत न यहै ।
व्याप्य सुव्यापक भाव बिना किमि, परको करता होत न यहै ॥
चेतन निज भ्रमतैं भ्रमत रहै ॥3 ॥

जब भ्रम नींद त्याग निज में निज, हित हेत सम्हारत है ।
वीतराग सर्वज्ञ होत तब, 'भागचंद' हित सीख कहै ॥
चेतन निज भ्रमतैं भ्रमत रहै ॥4 ॥

— कविवर भागचन्दजी

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़
सम्पादक
पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून
सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़
पण्डित देवेन्द्र जैन, बिजौलियां

इस अङ्क के प्रकाशन में सहयोग-
श्री अंश जैन
सुपुत्र
श्री अमितचतरसेन जैन
C/o. **श्री सी एस. जैन,**
88 टैगोर विला, टैगोर कॉलोनी,
देहरादून - 248001
(उत्तरांचल)

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

क्या - कहाँ

जिज्ञासा होती है कि..... ५
समयसार का श्रवण करने से..... १६
ज्ञानभावना आनंददायक है..... १८
भगवान के मार्ग का..... २१
आचार्यदेव परिचय शृंखला....
श्री यतिवृषभ..... २३
श्री गृद्धपिच्छ उमास्वामी..... २५
उपदेश सिद्धांत रत्नमाला..... २९
आनन्द की जन्मभूमि..... ३२
समाचार-दर्शन..... ३३

जिज्ञासा होती है कि—जीव कैसा होगा ?

आचार्यदेव सात बोलों द्वारा जीव का अलौकिक स्वरूप समझाकर सुंदर स्वसमयपना कैसे होता है—वह बतलाते हैं।

[श्री समयसार गाथा 2 पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन से]
(वीर संवत् 2498, मगशिर शुक्ला 1 से 4)

मंगलाचरणरूप से सिद्धभगवंतों को आत्मा में स्थापित करके अर्थात् सिद्धसमान साध्यरूप जो शुद्ध आत्मस्वरूप, उस ओर ज्ञान को एकाग्र करके, समयसार में सर्व प्रथम आचार्यदेव 'समय' अर्थात् जीव नामक वस्तु, उसका स्वरूप बतलाते हैं।

'समय' उसे कहा जाता है जो एकसाथ जानने और परिणमन करने—ऐसी दोनों क्रियारूप हो। जीववस्तु जानती है और परिणमित होती है, इसलिए वह समय है। जीव अनंत हैं; उन सब जीवों में जानने और परिणमन करने की दोनों क्रियाएँ एकसाथ सदा होती हैं। अब वे क्रियाएँ धर्मी को कैसी होती हैं और अज्ञानी को कैसी होती हैं—वे दोनों प्रकार भी इस दूसरी गाथा में बतलाए हैं। टीका में पहले सात बोलों से जीव का अलौकिक स्वरूप बतलाकर, पश्चात् उसकी अवस्था के दो प्रकार (स्वसमयपना और परसमयपना) किस प्रकार है, वह समझाया है।

धर्मी आत्मा अपनी निर्मल ज्ञानपर्याय में स्थित है

पर से भिन्न आत्मा की स्वानुभूति द्वारा जो आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमित हुआ है, वह दर्शन-ज्ञान-चारित्रपर्याय में स्थित आत्मा स्वसमय है। आत्मा स्वयं परिणमित होकर अपनी पर्याय में आया है, इसलिए वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित है। ऐसी पर्यायरूप से परिणमित आत्मा, वह स्वसमय है; वह धर्मात्मा है।

— स्वोन्मुख हुई निर्मल पर्यायरूप जो परिणमित हुआ, वह आत्मा स्वसमय है।

—पर के साथ एकत्वबुद्धि से मिथ्यात्वभावरूप जो परिणमित हुआ, वह परसमय है।

पहले अज्ञानदशा में आत्मा मिथ्यात्वादि परभावोंरूप से परिणमन करके उनमें स्थित था, वह परसमय था; उसे पुद्गलकर्म में ही स्थित कहा है। अब पर से भिन्न स्व को जानकर स्वभाव में एकत्वरूप से परिणमित होकर जीव स्वयं स्वसमय हुआ है।

आत्मा अपनी पर्याय में एकत्वरूप परिणमन करता है और उसी में स्थित वर्तता है। धर्मी का आत्मा कहाँ है ? पर में नहीं है, रागादि में नहीं है, स्वयं जिस निर्मल पर्यायरूप परिणमित हुआ है, उसी में वह स्थित है। —ऐसा स्वसमयरूप जीव, वह सच्चा जीव है। ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप आत्मा का जो सत्स्वभाव था, उस स्वभाव में एकत्वरूप से आत्मा अपने स्वभाव के सम्यक्भावरूप से परिणमित हुआ, जिससे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय प्रगट हुई, उस पर्याय में स्थित आत्मा स्वसमय है; वह सुंदर सुशोभित है।

परभावों को अनुभूति से भिन्न कहा, परंतु अनुभूति के साथ आत्मा को अभिन्न-एक कहा; आत्मा और उसकी अनुभूति को अभेद करके उसी को शुद्धनय कहा, उसी को जिनशासन कहा। इस प्रकार आत्मा अपने जिस शुद्धभावरूप परिणमित हुआ, उसरूप ही वह है, अर्थात् उसी में स्थित हैं; उसे स्वसमय कहते हैं।

'जीव' अर्थात् भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शन-आनंद, ऐसे अनंत स्वभावरूप एक वस्तु है; वह जब अपने में एकत्वरूप से ज्ञान-दर्शन-आनंदरूप से परिणमित हुआ, तब वह रागादि परभाव में स्थित नहीं रहा, अपने स्वरूप में ही तन्मय—स्थिर रहा, इसलिए वह स्वसमय है। ऐसे स्वसमयरूप से आत्मा शोभता है, वही एकत्व में शोभता हुआ सुंदर है। ऐसे

आत्मा से भिन्न समस्त परभावों को पुद्गलकर्म के साथ तन्मय गिनकर, मिथ्यात्वादि अज्ञानभाव में स्थित जीव को 'पुद्गलकर्मप्रदेश में स्थित' कहकर 'परसमय' कहा है। ऐसे स्वसमय तथा परसमय—दोनों को जानकर, स्वयं अपने आत्मस्वभाव में एकत्वरूप से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप से परिणमित होना, वह तात्पर्य है।

- ❀ यहाँ एकत्वरूप से परिणमित होना और जानना, उसका नाम 'समय' है।
- ❀ जो स्व में एकत्वरूप से परिणमित हो और स्व को एकत्वरूप से जाने, वह स्वसमय है।
- ❀ जो पर में एकत्व मानकर रागादिरूप परिणमित हो और पर को एकत्वरूप से जाने, वह परसमय है।
- ❀ परसमयपना दु:खदायक है, उसे छोड़ने के लिए और सुखदायक ऐसा स्वसमयपना प्रगट करने के लिए, पर से अत्यंत भिन्न आत्मा कैसा है, उसका स्वरूप भलीभाँति जानना चाहिए।

समय अर्थात् जीव... वह जीव कैसा है, उसका सात बोलों से वर्णन करते हैं:—

(1) जीव उत्पाद-व्यय-ध्रुव की एकतारूप सत्तासहित है

जीव सदा अपने परिणमनस्वभाव में स्थित है, इसलिए वह उत्पाद-व्यय-ध्रुव की एकतारूप सत्तासहित है। जीव का अस्तित्व ही उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप है, इसलिए नित्यरूप स्थित रहकर अपने परिणामस्वरूप में वह वर्तता है; परिणाम से भिन्न नहीं वर्तता। ऐसे स्वरूप से जीव का सत्पना है। इस प्रकार सर्व प्रथम ही जीव का सत्पना निश्चित किया।

'सत्' में द्रव्य-पर्याय दोनों का समावेश हो जाता है। परिणमनसहित नित्य स्थित रहनेवाला सत् आत्मा है। ऐसा सत् अपने से ही है, किसी अन्य के साथ उसे संबंध नहीं है—ऐसे जीवतत्त्व को जो जानता है, वह अपने में एकत्वरूप से ज्ञान और परिणमन करके स्वसमयरूप होता है। यहाँ सर्वज्ञदेव द्वारा साक्षात् देखे हुए जीवतत्त्व का स्वरूप सात बोलों से समझाते

हैं। एकांत ध्रुव या एकांत क्षणिक ऐसा कोई सत् तत्त्व नहीं है। सत् उसी को कहा जाता है जो सदा अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभाव में स्थित हो। उत्पाद-व्यय और ध्रुव, ऐसे तीन भाववाला जीव का अस्तित्व है; उसमें से एक भी भाव को निकाल देने से अस्तित्व ही नहीं रहता। उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वभावरूप से मेरा अस्तित्व है और अपने स्वभाव में स्थित रहकर मैं ही अपने परिणामस्वभाव में स्थित हूँ—ऐसा धर्मी जानता है। नित्य स्थित रहना और पर्यायरूप से परिणमित होना—यह दोनों मेरा स्वभाव ही है; वह किसी अन्य के कारण नहीं। इस प्रकार सर्व प्रथम जीव का स्वाधीन उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप अस्तित्व निश्चित किया। अब, वह अस्तित्व किस प्रकार है, सो बतलाते हैं। क्योंकि अस्तित्व तो जीव के अतिरिक्त अन्य अजीव पदार्थों में भी है, इसलिए जीव के अस्तित्व में क्या विशेषता है, वह बतलाकर जीव को अन्य पदार्थों से भिन्न बतलाया है।

(2) जीव चैतन्यस्वरूप है

जीववस्तु सत् है, वह सत्पना कैसा है ? तो कहते हैं कि चैतन्यरूप से प्रकाशमान आत्मा दर्शन-ज्ञानस्वरूप है। दर्शन और ज्ञान की ज्योति द्वारा जो स्वयं प्रकाशमान है, वह जीव है। ऐसी ज्ञानज्योति में राग नहीं आता, कर्म नहीं आता, शरीर नहीं आता। ज्ञान-दर्शनमय चैतन्यप्रकाशरूप से मेरा अस्तित्व है—ऐसा धर्मी जीव अनुभव करता है। मात्र उत्पाद-व्यय-ध्रुव तो जड़ में भी हैं परंतु जीव के उत्पाद-व्यय-ध्रुव तो चैतन्यभावरूप हैं; आत्मा सदा चैतन्यरूप से प्रकाशमान है।

अहा, चेतनस्वभावरूप से जो प्रकाशित हो, उसी को जीव कहा। जो रागरूप वर्ते, वह जीव—ऐसा नहीं कहा है। राग के बिना भी जीव ज्ञानरूप से प्रकाशित होता है, ज्ञान वह कहीं उपाधि नहीं है, जीव का स्वरूप ही है; विकल्प और राग हो, वह कहीं जीव का स्वरूप नहीं है। चैतन्यता कहीं राग के कारण नहीं है; राग से भिन्न चैतन्यता है, राग के अभाव में भी वह प्रकाशित होती है, इस प्रकार जीव चैतन्यसत्तारूप है।

(3) अनंत धर्मों में फैला हुआ एक धर्मी—ऐसा जीवद्रव्य है

आत्मा सत् है और चैतन्यस्वरूप है; तो क्या उसमें एक ही धर्म है ?—नहीं; चैतन्यभाव में अनंत धर्मों का समावेश होता है; जीव अपनी चेतनासहित अनंत धर्मों में व्याप्त होकर फैला हुआ एक द्रव्य है। गुण और पर्यायें अनंत हैं, उन अनंत धर्मों में एकरूप से आत्मा विद्यमान है, इसलिए धर्मी द्रव्य एक है; अपने अनंत धर्मों में एकसाथ रहने पर भी वह एक द्रव्यरूप से ही विद्यमान है; अनंत धर्मों में रहने से आत्मा कहीं खंड-खंडरूप नहीं हो गया है, वह एक द्रव्यरूप से ही प्रगट है। स्वयं एक, तथापि अनंत धर्मों में एकसाथ रहने की जिसकी अंचित्य शक्ति है—ऐसा आत्मा है। नित्यता उसका धर्म है और परिणमन भी उसका धर्म है; इस प्रकार अनंत धर्मस्वरूप एक वस्तु है। अहा! अपने अनंत धर्मों को एकरूप लक्ष्य में ले, वहाँ आत्मा राग से भिन्न हो जाता है और गुणभेद के विकल्पों से भी पार होकर अभेद आत्मा अनुभव में आता है। 'मुझमें अनंत धर्म हैं'—ऐसा स्वीकार स्वसन्मुख ज्ञान द्वारा ही होता है। अनंत धर्मों को एकसाथ (गुणभेद के विकल्प रहित) लक्ष्य में-प्रतीति में ले ले, उस ज्ञान की शक्ति कितनी ? राग में अटका हुआ ज्ञान अनंत धर्मों का सच्चा स्वीकार नहीं कर सकता। राग जितना ही मैं हूँ—ऐसी बुद्धि में अटका हुआ ज्ञान, रागरहित अनंत गुणों को स्वीकार कैसे सकेगा ? अनंत जीव, प्रत्येक जीव में अपने अनंत गुण स्वाधीन, यह बात जैनशासन में ही है और इसका स्वीकार करनेवाले जीव को अपूर्व भेदज्ञान होता है।

अरे जीव! तू कैसा है ? तेरा स्वरूप कैसा है ? उसका यह वर्णन वीतरागी संत तुझे सुनाते हैं, अंतर में बारंबार उसके प्रेम और उत्साहपूर्वक तू अपने स्वरूप को पहिचान!

(4) क्रमरूप वर्तती पर्यायें, अक्रमरूप रहते गुण—वह जीव का स्वभाव है।

अनंत गुण-पर्यायें वह जीव का स्वभाव ही है; उनमें गुण एकसाथ

रहनेवाले अक्रम हैं और पर्यायें उत्पाद-व्ययरूप से वर्तती हुई क्रमवर्ती हैं। तीसरे बोल में द्रव्यपना कहकर अनंत धर्मों का उसमें समावेश किया; यहाँ गुण-पर्यायपना कहते हैं। गुण और पर्यायें वे दोनों आत्मा का स्वभाव ही है। क्रमशः होनेवाली पर्यायें भी आत्मा का स्वभाव ही है; अपने स्वभाव से ही वह क्रमवर्ती पर्यायरूप परिणमित होता है और अनंत गुणरूप से स्थित रहता है। एक वस्तु में द्रव्य-गुण-पर्याय, ऐसे भेद का विचार आत्मा का स्वरूप निश्चित करने के लिए होता है, परंतु आत्मा की साक्षात् अनुभूति में द्रव्य-गुण-पर्याय इन तीन का भेद नहीं है, अर्थात् विकल्प नहीं है; वहाँ तो अपनी आनंदमय चैतन्यपरिणतिरूप परिणति होकर उसमें आत्मा अभेदरूप से स्थिर हुआ है; वह स्वसमय है।

आत्मा परिणमित तो सदा होता ही है, परंतु जब वह स्वयं अपने को एकत्वरूप से जानकर परिणमित हो, तब वह सम्यक्त्वादि अपने शुद्धभावरूप परिणमित होकर उसी में स्थित होता है और उसे स्वसमय कहा जाता है। ऐसा स्वसमयपना, वह सुंदर है, उसमें एकत्वरूप से आत्मा शोभता है। आत्मा में द्रव्य-गुण-पर्यायों की, सामान्य-विशेष भावों की अचिंत्य गंभीरता भरी है; उसकी पहिचान करने की यह बात है।

(5) स्व-पर को प्रकाशित करे, ऐसे एकरूप चैतन्यप्रकाशमय जीव है।

आत्मा स्व को, पर को, जड़ को, चेतन को—सर्व पदार्थों को अपनी चैतन्यशक्ति से प्रकाशित करता है; सर्व को जानने पर भी स्वयं तो एक चैतन्यप्रकाशरूप ही रहता है। पर को—जड़ को जानते हुए वह जड़रूप नहीं हो जाता, राग को जानते हुए रागरूप नहीं हो जाता; परंतु जड़ को या राग को जानने पर भी चैतन्यभाव स्वयं तो एक चैतन्यभावरूप ही रहता है। अनेक पदार्थों को जानने पर भी चेतना अपने एकत्व को नहीं छोड़ती। ऐसे स्व-पर प्रकाशक चैतन्यसामर्थ्यवान पदार्थ, वह जीव है।

चेतना पर से भिन्न है, तथापि भिन्न रहकर भी वह पर को जान लेती है—ऐसी उसकी शक्ति है; तथा वह चेतना स्वयं अपने को भी अपने में तन्मय होकर जानती है। स्व-पर अनेक पदार्थों को जाने, तथापि स्वयं चेतनास्वरूप में ही तन्मय रहने के कारण आत्मा एकरूप ही है; अनेक को जानने से स्वयं अनेकरूप नहीं हो जाता। सर्व को जानते हैं, ऐसे सामर्थ्य के कारण सर्वज्ञ कहलाते हैं; वह सर्वज्ञता आत्मा है, आत्मा स्वयं निश्चय से वैसी सर्वज्ञपर्यायरूप हुआ है; वह भी जीव का स्वभाव है। अनंत स्वभावों से गंभीर ऐसा जीवद्रव्य है। मैं ही ऐसी शक्तिवाला हूँ कि जिसका ज्ञान स्व-पर को जाननेरूप परिणमित होता है और तथापि अपने एकत्व को नहीं छोड़ता—ऐसा विश्वप्रकाशी अद्वितीय चैतन्यदीपक जीव है। पर्याय को-राग को-जड़ को जानना, वह कोई दोष नहीं है, उन्हें जानने से कहीं चैतन्यपर्याय मलिन नहीं हो जाती। सर्व को जानना, वह तो चैतन्य की निर्मलता का सामर्थ्य है, सहज स्वरूप है।—ऐसे अपने जीव को तू जान।

(6) अन्य द्रव्यों से असाधारण ऐसे चैतन्यस्वभावरूप जीव है।

जगत में जीव के अतिरिक्त अन्य अजीव पदार्थ भी हैं—जो कि चेतनारहित हैं; उन सर्व पदार्थों से जीव को अत्यंत भिन्नता जीव के चेतना लक्षण द्वारा निश्चित होती है। चेतनता, वह जीव का असाधारण स्वभाव है। अन्य पाँच द्रव्यों के जो असाधारण-विशेष गुण, वे जीव में नहीं हैं; और जीव का असाधारण चेतनागुण किसी अन्य में नहीं है; इस प्रकार जीव अन्य पाँचों प्रकार के अजीव द्रव्यों से अत्यंत भिन्न है। उसकी पर से अत्यन्त भिन्नता और अपने ज्ञानस्वभाव के साथ एकता है। ऐसे स्वभाव से एकत्व-विभक्तरूप से वह शोभता है; जीव को ऐसे असाधारण चैतन्यस्वरूप से पहिचानने पर राग से भी भिन्न परिणमन होता है।

जीव के सिवा अन्य द्रव्य जगत में हैं अवश्य, जीव उन्हें जानता भी है,

परंतु वे अन्य द्रव्य जीव के अस्तित्व में नहीं हैं। जीव अपने ज्ञानादि स्वधर्मों के अस्तित्व में ही हैं। ऐसे अपने भिन्न अस्तित्व को जानकर भेदज्ञान करनेवाला जीव स्वद्रव्यसन्मुख सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्यायरूप परिणमित होता है।

(7) जीव चैतन्यस्वभाव से टंकोत्कीर्ण है

इस एक आत्मा के अतिरिक्त अन्य अनंत जीव तथा अनंत अजीव पदार्थ इस जगत में विद्यमान हैं; ऐसे अनंत जीव-अजीव पदार्थों के साथ एकक्षेत्र में स्थित होने पर भी चैतन्यरूप ही रहता है; चैतन्य मिटकर कभी जड़ नहीं होता; इसलिए जीव सदा अपने टंकोत्कीर्ण चैतन्यस्वरूप में विद्यमान है।

अपना ऐसा स्वरूप भूलकर, अनादि काल से चार गतियों के भयंकर दु:खों में भ्रमण किया, तथापि चैतन्यस्वभाव ज्यों का त्यों रहा है; जीव के ज्ञान-आनंदस्वभाव का एक भी अंश कम नहीं हुआ, टंकोत्कीर्ण ज्यों का त्यों विराजमान है। एक क्षेत्र में रहने पर भी वह पर के साथ एकमेक नहीं हुआ है, तथा पर्याय में विकृति होने पर भी मूल स्वभाव का नाश नहीं हुआ है, स्वभाव अन्यथा नहीं हुआ है। अहा, जीव का स्वभाव तो देखो! ...ऐसे अपने जीव स्वभाव को पहिचानना ही सच्चा करनेयोग्य कार्य है; बाकी संसार में सब असार है।

इस प्रकार जो उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप सत् है, जो चैतन्यज्योति है, जो अपने अनंत धर्मों में विद्यमान है, जो गुण-पर्यायवान है, जो स्व-परप्रकाशक है, जो अन्य द्रव्यों से भिन्न असाधारण चेतनागुणरूप है और जो सदा अपने स्वरूप में टंकोत्कीर्ण स्थित है—ऐसे विशेषणोंवाला जो जीव पदार्थ है, उसी को 'समय' कहा जाता है, क्योंकि वह एकत्वरूप से जानना और परिणमन करना—दोनों क्रियाएँ एकसाथ करता है।

(8) स्वसमय और परसमय—उनमें स्वसमय की सुंदरता।

जीव अर्थात् 'समय' नामक पदार्थ कैसा है, वह सात बोलों से

बतलाया। प्रत्येक जीव में जानने और परिणमन करने की दोनों क्रियाएँ एकसाथ होती हैं; परंतु उनमें दो प्रकार हैं—ज्ञानी अपने चैतन्यस्वरूप आत्मा को ही स्व-रूप जानता है और स्व में ही एकत्वबुद्धि से सम्यग्दर्शनादिरूप परिणमित होकर उसमें स्थिर होता है, इसलिए वह स्वसमय है; और अज्ञानी स्व को भूलकर पर को एकत्वरूप से जानता है तथा मोहादि परभावों में एकत्वरूप परिणमित होकर उसमें स्थिर होता है, इसलिए वह परसमय है। इस प्रकार जीव नामक समय को स्वसमय और परसमय—ऐसे दो प्रकार होते हैं। उन्हें जानकर स्वसमयपना प्रगट करना और परसमयपना छोड़ना; क्योंकि स्वसमयरूप एकत्वरूप से ही आत्मा शोभता है, उसी में आत्मा की सुंदरता है; परसमयपना, वह आत्मा को नहीं शोभता, उसमें तो विसंवाद है, बंधन है।

जीव को स्वसमयपना कब होता है ?—कि जब अपने आत्मस्वरूप की प्रतीति करके स्व-पर का भेदज्ञान करे, तब जीव पर से भिन्न अपने दर्शन -ज्ञानस्वभाव में निश्चल परिणतिरूप से परिणमित होता हुआ उसमें एकत्वरूप से स्थित होता है, तब वह स्वसमय है। अहा, यह भेदज्ञानज्योति तो त्रिलोक प्रकाशक केवलज्ञानदीप को प्रज्वलित करनेवाली है। अहा, जो केवलज्ञान प्रदान करता है, ऐसे भेदज्ञान की शक्ति का क्या कहना! एक ओर अपना ज्ञान-दर्शनमय स्वभाव और दूसरी ओर सर्व परद्रव्य (-देव-गुरु-शास्त्र-तीर्थ-विकल्पादि सब), इस प्रकार अत्यंत भिन्नता जाने, तब परद्रव्य में एकाग्रता छोड़कर स्वद्रव्य में एकता करे और उसे स्वसमयपना हो। अपने चैतन्यस्वभाव से अधिक जगत के किसी अन्य पदार्थ की या रागादि परभाव की महिमा आये तो वह जीव उस परपदार्थ से छूटकर स्वतत्त्व की ओर उन्मुख नहीं हो सकेगा, उसे सच्चा भेदज्ञान नहीं होगा। यहाँ तो भेदज्ञान करके स्वसमय होकर जो केवलज्ञान की ओर चलने लगा है, उसकी बात है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह आत्मा का स्व है, उसमें स्थित वह स्वसमय है। जिसे कहीं भी पर में सुखबुद्धि हो, वह जीव पर से भिन्न होकर स्व में स्थित नहीं हो सकता। जो स्व और पर की भिन्नता को नहीं जानता, वह अज्ञानभावरूप परिणमित होता है, उसे सम्यक्त्वादि में प्रवर्तनरूप स्वसमयपना नहीं होता; उसे तो पुद्गलकर्म के प्रदेश में स्थित कहा है। जो चेतना में स्थित नहीं, वह कर्म में ही स्थित है। दो भाग करके बात कही है—जो अपने ज्ञानस्वभाव में स्थित है, उसे कर्म की ओर के किसी भी भाव में एकत्वबुद्धि नहीं रहती; और जिसे पर की ओर के किसी भी भाव में एकत्वबुद्धि है, वह जीव अपने ज्ञानस्वभाव में एकता नहीं कर सकता।

अरे जीव! तू अपने तत्त्व को जानकर, पर से भिन्नता और स्व में एकता कर! ऐसे अपूर्व भेदज्ञान से तुझे अल्प काल में केवलज्ञान एवं सिद्धसुख की प्राप्ति होगी। जिसने सिद्धभगवान को आत्मा में स्थापित किया, उसे स्व-पर का ऐसा भेदज्ञान होगा ही। सिद्ध में कर्म का या राग का किंचित् संबंध नहीं है, उसी प्रकार इस आत्मा का स्वभाव भी कर्म और रागरहित है; ऐसे अपने आत्मा को जानकर स्वयं अपने में एकत्वरूप से परिणमन करने पर आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमित हो जाता है। जिस रूप परिणमित हुआ, उसी में वह स्थित हुआ; सम्यक्त्वादि स्वभावरूप से परिणमित होकर उसमें स्थित हुआ, वह स्वसमय हुआ। वह आत्मा स्वयं अपने स्वभाव को ही स्व-रूप से जानता है और उसी में एकत्वरूप से परिणमन करता है।—ऐसी दशा भेदज्ञान द्वारा ही होती है। इसलिए जीव का यथार्थ स्वरूप जानकर पर से भिन्नता की प्रतीति करना चाहिए।—ऐसा भेदज्ञान, वह केवलज्ञानविद्या को उत्पन्न करता है।

जगत के सर्व पदार्थ स्वयं अपने गुण-पर्याय में ही विद्यमान हैं। जीव वस्तु भी अपनी पर्याय में रहती हैं। जो अपनी निर्मल पर्याय में वर्तता है, वह

स्वसमय है; जो स्व-पर को एक मानता हुआ अज्ञान पर्याय में वर्तता है, वह परसमय है। चौथे गुणस्थान में सम्यक्त्वादि जितनी शुद्ध अनुभूति वर्तती है, उसमें स्थित आत्मा स्वसमय है। अहा! आत्मा अनुभूति में आया, उसमें तो अनंत गुणों का समावेश हो जाता है। स्वसन्मुख अनुभूति में पूर्ण आत्मा समा जाता है। स्व-पर का भेदज्ञान करके, शुद्धपरिणति के साथ एकत्वरूप परिणमित आत्मा, वह स्वसमय है। जैसा ज्ञानस्वभाव है, वैसा परिणमन हुआ, उसमें तो आत्मा शोभता है, वह तो आत्मा का स्वरूप है। परंतु ज्ञानस्वभाव से विरुद्ध ऐसे मोहादि परभावरूप परिणमित होना, वह परसमयपना है, उसमें आत्मा की शोभा नहीं है।

एकत्वपने में आत्मा की शोभा है, परंतु संसारी जीवों को उस एकत्व की अनुभूति दुर्लभ है; दुर्लभ होने पर भी ज्ञान की यथार्थ उपासना द्वारा उसकी प्राप्ति हो सकती है। इस समयसार में आचार्यदेव ने आत्मा के अद्‌भुत वैभव से वह एकत्वस्वरूप बतलाकर उसका स्वानुभव कराया है। शुद्ध आत्मा की स्वानुभूति महा आनंदमय है और वही इस समयसार के अभ्यास का फल है।

त्रैकालिक भूतार्थस्वभाव के सन्मुख होकर उसका स्वीकार करने से आत्मा स्वयं अपने में एकत्व से सम्यग्दर्शनादिरूप परिणमित होता है। ज्ञानस्वभाव में तन्मयरूप ज्ञानभाव से परिणमन करनेवाला आत्मा, वह सच्चा आत्मा है और क्रोधादि परभावों में तन्मय होकर अज्ञानभावरूप से परिणमित आत्मा, वह अनात्मा है, उसे आत्मभाव की प्राप्ति नहीं हुई है। इस प्रकार जीव को एक स्वसमयपना और दूसरा परसमयपना—ऐसी दो अवस्थाएँ हैं; उनमें स्वसमयपना, वह सुंदर है। अनादि से परसमयपना है, वह छूटकर स्वसमयपना हो—ऐसी बात इस समयसार में बतलायी है... उसे हे भव्य जीवो! तुम बहुमानपूर्वक सुनकर लक्ष्य में लेना।

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-9 (जनवरी-1972), वर्ष-27]

समयसार का श्रवण करने से आनंद का द्वार खुल जायेगा

[श्री समयसार, कलश-3 पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन]

(मार्गशीर्ष कृष्णा 10, वीर सं. 2498)

आचार्यदेव कहते हैं कि—इस समयसार की टीका द्वारा अनुभूति अत्यंत शुद्ध होओ! इसलिए हे भव्य श्रोता! इस समयसार के श्रवण से तेरी परिणति भी शुद्ध होगी – ऐसा वचन है; लेकिन किस प्रकार श्रवण करना? वह यहाँ बतलाते हैं:—हम जो शुद्धात्मा बतलाना चाहते हैं, उस पर लक्ष्य का जोर देना, श्रवण के विकल्प पर जोर मत देना। इस प्रकार उपयोग में शुद्धात्मा का मंथन करते-करते तुझे अवश्य शुद्धात्मा की अनुभूति होगी; तेरा मोह नष्ट हो जाएगा और आनंद का द्वार खुल जाएगा।

* समयसार की टीका करते हुए अमृतचंद्रस्वामी कहते हैं कि—इस समयसार की व्याख्या से अर्थात् समयसार में शुद्धात्मा के जो भाव कहे हैं, उन भावों के ज्ञान में बारंबार मंथन से, आत्मानुभूति शुद्ध होती है।
* देखो, इसमें टीका रचते समय शास्त्र की ओर का जो शुभ विकल्प है, उस विकल्प की मुख्यता नहीं है, परंतु उसी समय विकल्प से भिन्न जो ज्ञान शुद्धात्मा की ओर कार्य कर रहा है, उस ज्ञान के बल से परिणति की शुद्धता होती है। विकल्प का जोर नहीं, ज्ञान का ही जोर है। विकल्प के जोर से शुद्धि होना माने, उसे तो समयसार की खबर ही नहीं है। भाई, समयसार का अभ्यास अर्थात् शुद्धात्मा की भावना; समयसार तो रागादि से भिन्न शुद्ध एकत्वरूप आत्मा बतलाकर उसकी भावना करने को कहता है और ज्ञान को अंतर्मुख करके शुद्धात्मा की ऐसी भावना, वही अनुभूति की शुद्धता का कारण है।
* 'समयसार' में हमारा जोर विकल्प पर नहीं है, विकल्प से पार हमारा

जो एक ज्ञायकभाव, वही हम हैं, उसी में हमारा जोर है। जो श्रोताजन ऐसे ज्ञायकस्वभाव की ओर लक्ष्य देकर समयसार का श्रवण करेंगे, उनकी परिणति भी शुद्ध होगी ही—ऐसा वचन है। इस प्रकार वक्ता और श्रोता दोनों के मोहनाश के लिए इस समयसार की रचना है। इसलिए हे भाई! तू विकल्प में खड़े रहकर मत सुनना; बीच में विकल्प आये, उस पर जोर मत देना, परंतु समयसार के वाच्यरूप जो शुद्धात्मभाव हम कहना चाहते हैं, उस 'भाव' को लक्ष्य में लेकर उस पर उपयोग का जोर देने से तेरा मोह नष्ट हो जाएगा और तेरे आनंद का द्वार खुल जाएगा।

* हे भव्य! इस समयसार का श्रवण करते हुए तू अंतर में शुद्धात्मा के ही लक्ष्य का मंथन करते रहना, उसका मंथन करते-करते परिणति भी शुद्ध हो जाएगी। आचार्यदेव कहते हैं कि—समयसार की टीका रचते समय हमारी परिणति में तो अपने परमात्मतत्त्व का ही मंथन चलता रहता है; परिणति अंतर में शुद्धस्वरूप के साथ केलि करती है; विकल्प है, उसमें हमारी परिणति का जोर नहीं है। पहले से ही विकल्प और चेतना की भिन्नता का जोर है; इसलिए विकल्प के समय भी ज्ञान में तो ऐसा आता है कि मैं विकल्प से भिन्न चैतन्यभाव हूँ; इसलिए ज्ञानपरिणति विकल्प से भिन्न होकर चैतन्य स्वभावोन्मुख होती जाती है और शुद्ध होती जाती है। ऐसा इस समयसार के मंथन का फल है।

* आचार्य भगवान कहते हैं कि इस समयसार द्वारा हम शुद्ध आत्मा बतलाएंगे। जिस शुद्धात्मा का हमने अनुभव किया है, वह हम इस समयसार में प्रगट करेंगे; इसलिए तुम भी शुद्धात्मा के ही लक्ष्य से समयसार को सुनना। अन्य सबसे लक्ष्य हटाकर अंतर में शुद्धात्मा में ही लक्ष्य को स्थिर करना... ऐसा करने से परमानंद का मार्ग तुम्हें अपने में दिखाई देगा; शुद्धात्मा की अनुभूति होगी और मोह का नाश हो जाएगा।

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-8 (दिसम्बर-1971), वर्ष-27]

ज्ञानभावना आनंददायक है

[श्री नियमसार गाथा 170 पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन से]

❀ ज्ञान आत्मा का सच्चा स्वभाव है, उसमें राग नहीं है। ऐसे ज्ञानस्वभावी आत्मा की भावना ही मोक्ष का कारण है।

❀ ज्ञान, वह आत्मा की स्वभाव-क्रिया है। आत्मा स्वयं स्वभाव से उस क्रियारूप होता है। ज्ञानक्रिया और आत्मा को तादात्म्यता है, एकरूपता है, इसलिए वह ज्ञान द्वारा स्वयं अपने को जानता है। आत्मा कर्ता और ज्ञान उसका साधन—ऐसा कहने पर भी कर्ता और करण दोनों अभेद हैं, भिन्न नहीं।

❀ पुण्य-पाप-विकल्प, वह विभाव-क्रिया है। आत्मा के स्वभावभावरूप वह क्रिया नहीं है; उस विभाव-क्रिया को आत्मा के ज्ञानस्वभाव के साथ एकरूपता—तादात्म्यता नहीं है, ज्ञान से भिन्न जाति होने से वास्तव में संयोगरूप संबंध है। इसलिए उस विकल्परूप विभावक्रिया द्वारा आत्मा जानने में नहीं आता। पर से भिन्न होकर अपने आत्मा के साथ एकमेक हो, वह ज्ञान आत्मा को जान सकता है। आत्मा का ज्ञानस्वभाव और रागादिभाव, उनमें विशेषता है—भिन्नता है, दोनों के बीच समानता नहीं, परंतु बहुत बड़ा अंतर है।

❀ ज्ञान आत्मा के साथ तादात्म्यरूप से उसे जानता है, राग का आत्मा के साथ तादात्म्य नहीं है, और वह आत्मा को जानता भी नहीं है। इस प्रकार राग और ज्ञान में अत्यंत भिन्नता है।

❀ इस प्रकार ज्ञान और विभाव का भेदज्ञान करके ज्ञान द्वारा ज्ञानस्वरूप आत्मा को जानना, वह वास्तव में स्वभाववाद है। ज्ञान और आत्मा का भेद मानना, वह विभाववाद है।

❀ ज्ञान, वह वास्तव में आत्मा का स्वरूप है, ज्ञान स्वयं अपने में एकाग्र रहकर अपने को तथा समस्त पदार्थों को जानता है। ज्ञान स्वयं आत्मा के स्वभाव में निश्चल है। ऐसे ज्ञान की भावना करना, वह अचल मोक्ष-आनंद का उपाय है। मोक्ष के आनंद की अभिलाषा हो, उन्हें

ऐसी भावना करनी चाहिए। ज्ञान की भावना कहो या ज्ञानस्वरूप आत्मा की भावना कहो, उसके बीच में कहीं राग नहीं आता, राग द्वारा ज्ञान की भावना नहीं होती, राग से भिन्न होकर, ज्ञानरूप होकर ज्ञान की भावना होती है और उस भावना द्वारा पूर्ण ज्ञान-आनंदरूप मोक्षफल की प्राप्ति होती है। ज्ञानभावना, वह मार्ग है और मोक्ष, वह मार्ग का फल।—इन दोनों का ज्ञान में समावेश है।

❀ चौथे गुणस्थान में भेदज्ञान होने पर ज्ञानभावना प्रारंभ हो गई है; वहाँ जो ज्ञानपरिणाम हैं, वे अपने स्वरूप में निश्चल हैं, वे राग के साथ एकमेक नहीं, भिन्न ही हैं। यही ज्ञानधारा वृद्धिंगत होते-होते पूर्ण होती है, तब अविनाशी आनंदमय मोक्षफल प्रगट होता है। अत: मोक्ष के अभिलाषी जीवों को ज्ञानभावना निरंतर भाना चाहिए।

❀ ज्ञानभावना में धर्मी को आनंद का वेदन है, उस आनंद में उपसर्ग का अभाव है। जिस प्रकार सिद्ध भगवान को मोह या उपसर्ग नहीं है, उसी प्रकार धर्मी को भी शुद्धस्वरूप के अनुभवरूप ज्ञानभावना में मोह नहीं है, उपसर्ग नहीं है। वाह देखो, यह साधक की ज्ञानभावना! मोह और उपसर्ग उस ज्ञानभावना से बाह्य है।

❀ ऐसी अपूर्व ज्ञानभावना भानेवाला साधक कहता है कि अहो! केवलज्ञान प्रगट हो, उस समय की क्या बात!—अभी साधकदशा में भी हमारा ज्ञान सीधा-स्वसंवेदन प्रत्यक्षपूर्वक अपने आत्मा को स्पष्ट जानता ही है; अभी हमारा ज्ञान भले ही मति-श्रुतरूप हो, तथापि आत्मा के स्वभाव में एकत्वरूप परिणमन करता हुआ आत्मा को अवश्य जानता है। ज्ञान सीधा आत्मा को जानता है; इसलिए बीच में कोई विकल्प-राग-इन्द्रिय के अवलंबन को वह स्वीकार नहीं करता। ज्ञान स्वयं आत्मा का शुद्धस्वरूप है, वह स्वयं अपने को न जाने, ऐसा कैसे हो सकता है? ज्ञान कहीं आत्मा से भिन्न नहीं है कि वह आत्मा को न जाने।

❀ अंतर में ज्ञानभावना द्वारा, ज्ञान को सीधा आत्मा में एकाग्र करके आत्मा को साक्षात् जानना ही लाखों बातों का सार है। वही मोक्ष का कारण है,

वही स्वभाव है। अहा, कोई अचिंत्य ज्ञानस्वभाव है कि जो आत्मा में तन्मय रहकर आत्मा को साक्षात् जानता है; आत्मा को जाननेवाला वह ज्ञान सदैव आनंदमय अमृत का भोजन करनेवाला है, स्वयं सहज परम आनंदरूप है, उसमें किन्हीं रागादि का प्रवेश नहीं है।

❀ राग आत्मा को नहीं जान सकता, क्योंकि वह आत्मा से भिन्न है।

❀ ज्ञान स्वयं आत्मा को साक्षात् जानता है, क्योंकि वह आत्मा का अभिन्न स्वभाव है।

हे जीव! ऐसे ज्ञानस्वभावी आत्मा की तू भावना कर। उस भावना द्वारा तुझे मोक्ष के परम आनंद का अनुभव होगा॥

स्व में तन्मय हुए बिना ज्ञान स्व को नहीं जान सकता। पर में तन्मय हो तो ज्ञान पर को नहीं जान सकता॥

आत्मा ऐसी स्ववस्तु है कि उसमें तन्मय होकर ही ज्ञान उसे जानता है, उससे भिन्न रहकर ज्ञान उसे नहीं जान सकता। राग तो स्वभाव से भिन्न है, अत: वह आत्मस्वभाव को नहीं जान सकता।

राग तो ज्ञान से भिन्न होने के कारण, उससे भिन्न रहकर ही ज्ञान उसे जानता है; परंतु यदि उसमें तन्मय हो तो वह राग को नहीं जान सकता।

वाह! आत्मा और राग का कैसा भेदज्ञान है!

वह भेदज्ञान आत्मा में तो एकता करता है और राग को पृथक् करता है; इस प्रकार दोनों को भिन्न-भिन्न कर देता है और राग से भिन्न ज्ञानानंदमय आत्मा को साधता है-अनुभव करता है। ज्ञान स्व को तो तन्मय होकर जानता है, और पर को उससे भिन्न रहकर जानता है, ऐसा उसका स्वभाव है, इसलिए स्व-आत्मा का ज्ञान वह निश्चय है और रागादि पर का ज्ञान वह व्यवहार है।

निश्चय के बिना व्यवहार नहीं होता, अर्थात् आत्मा को जाने बिना पर का सच्चा ज्ञान नहीं होता; स्वपूर्वक ही पर का सच्चा ज्ञान होता है।

सच्चा ज्ञान जानता है कि मेरा स्व वह आत्मा है, रागादि कहीं मेरा स्व नहीं है, मुझसे तो वह पर हैं-भिन्न हैं।

—ऐसे भेदज्ञान द्वारा धर्मी जीव आनंद से मोक्ष को साधते हैं। ❀

भगवान के मार्ग का समावेश ज्ञान में

* आत्मा स्वयं स्वत:सिद्ध ज्ञान है, और ज्ञान स्वयं स्वत:सिद्ध पुण्य-पाप, राग-द्वेषरहित है; उसमें स्वत: आनंद है परंतु दु:ख नहीं है। ज्ञानभाव अंतर में है, उसे पकड़ने से आत्मा वेदन में आता है और उस वेदन में राग-द्वेषादि समस्त विकार का अभाव है तथा अनंत गुण के शांतरस का सद्भाव है। ज्ञानस्वरूप तो विकाररहित शांत-शांत... है, वही मुक्ति का मूल है; उस ज्ञान के साथ महा आनंद—महासुख है। ऐसे अनंत गंभीर भावों से भरा हुआ ज्ञानतत्त्व है, वह आत्मा स्वयं ही है—वह मैं स्वयं ही हूँ।
* आत्मा ज्ञानमय है; उसके ज्ञानमय परिणामों में तो शांति होती है, वीतरागता होती है, महान आनंद और सुख होता है, चैतन्यप्रकाश होता है; ज्ञानपरिणाम में अशांति नहीं होती, राग-द्वेष नहीं होते, दु:ख नहीं होता, मोहांधकार नहीं होता। ऐसा चैतन्यतेज मैं हूँ—ऐसा जो अनुभव करता है, उसी को सम्यक्त्वादि वीतरागभावरूप सामायिक होती है। ऐसे ज्ञानभाव द्वारा ही भव का नाश और मोक्षसुख की प्राप्ति होती है। इसलिए धर्मात्मा कहते हैं कि—अहा, ऐसा जो मेरा ज्ञान, उसी को मैं पूजता हूँ, उसी में नमता हूँ, उसी में स्वोन्मुख होकर एकाग्र होता हूँ।
* रागरहित मेरा जो ज्ञानस्वरूप है, वही सुंदर है, वही जगत में शिरोमणि है।—ऐसे ज्ञानरूप से आत्मा का अनुभव करना ही भगवान वीतराग का मार्ग है। भगवान के मार्ग का समावेश ज्ञान में है, राग में नहीं। ज्ञान तो राग का नाशक है, उत्पादक नहीं है; क्योंकि ज्ञान स्वयं रागरहित है।
* अहा, ऐसा ज्ञान! मात्र शुद्ध वीतरागी ज्ञान, सो मैं हूँ; ऐसी ज्ञान की

अनुभूति में महा आनंद है और राग का अभाव है। अरे, स्वयं अपने ज्ञान का स्वीकार किए बिना उसमें एकाग्रता या निर्विकल्पता कहाँ से होगी ? आनंद का धाम तो मैं स्वयं हूँ, ज्ञान का धाम भी स्वयं हूँ। इस जगत में आत्मा का ज्ञानस्वभाव त्रिकाल पूज्य है, उसमें ज्ञान को युक्त करके, ज्ञान द्वारा मैं अपने ऐसे स्वभाव की पूजा करता हूँ। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसकी उपासना-सेवा-पूजा ज्ञान द्वारा ही होती है, शरीर द्वारा या राग द्वारा उसकी पूजा नहीं होती। शरीर से और राग से भिन्न होकर ज्ञान में एकाग्र होना ही ज्ञान की आराधना है, वही मुक्ति का उपाय है। [आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-8 (दिसम्बर-1971), वर्ष-27]

शुद्धोपयोग ही धर्म है

आत्मा का शुद्धभाव ही वास्तव में धर्म है; इसके सिवा जीव संसार की चार गतियों में घूम रहा है। बिना शुद्धभाव के जीव को सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, केवलज्ञान या मोक्ष कुछ भी नहीं होता। शुभराग द्वारा किसी को केवलज्ञान या सम्यग्दर्शनादि नहीं होता। आत्मा की निर्मल पर्यायरूप जितने धर्म हैं, वे सभी शुद्धोपयोग में समा जाते हैं। अतः शुद्धोपयोग ही धर्म का सर्वस्व है, और वही धर्मी का मनोरथ है, वही प्रशंसनीय है। इस शुद्धोपयोग से ऊँची जगत में कोई दूसरी चीज़ नहीं है। शुभोपयोग सम्यग्दर्शन नहीं, सम्यग्ज्ञान नहीं, मुनिदशा नहीं, मोक्षमार्ग नहीं; शुभोपयोग से न तो केवलज्ञान होता है और न निर्वाण। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, मोक्षमार्ग, केवलज्ञान तथा सिद्धपद—ये सभी शुद्धोपयोग में समाविष्ट हैं। इसलिये आत्मा का जैसा शुद्धस्वभाव है, वैसा जानकर उसमें एकाग्रतारूप जो शुद्धोपयोग, वही मोक्षार्थी का कर्तव्य है, मोक्षार्थी को वही आदरणीय है।

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-9 (जनवरी-1972), वर्ष-27]

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान आचार्यदेव
श्री यतिवृषभ

श्री जयधवला टीका के निर्देशानुसार, आचार्य यतिवृषभ ने आर्यमंक्षु और नागहस्ति से कसायपाहुड़ की गाथाओं का सम्यक् प्रकार अध्ययनकर अर्थ अवधारण किया और कसायपाहुड़ पर संक्षिप्त शब्दावली में चूर्णिसूत्रों की रचना करके महान अर्थ को निबद्ध किया। यदि आचार्य यतिवृषभ चूर्णिसूत्रों की रचना न करते, तो संभव है कि कसायपाहुड़ का अर्थ ही स्पष्ट न हो पाता। अत: दिगम्बर परंपरा में चूर्णिसूत्रों के प्रथम रचयिता होने के कारण आचार्य श्री यतिवृषभ का अत्यधिक महत्त्व है।

धवलाकार ने यतिवृषभाचार्य के चूर्णिसूत्रों को वृत्तिसूत्र भी कहा है, क्योंकि 'जिसमें महान् अर्थ हो, जो हेतु, निपात और उपसर्ग से युक्त हो, गंभीर हो, अनेक पद समन्वित हो, अव्यच्छिन्न हो और तथ्य की दृष्टि से जो धारा प्रवाहिक हो, उसे चूर्णिसूत्र कहते हैं' अर्थात् जो तीर्थंकर की दिव्यध्वनि से निस्सृत (प्रवाहित) बीज पदों का अर्थोद्घाटन करने में समर्थ हो वह चूर्णिपद है। यथार्थत: चूर्णिपदों को बीजसूत्रों की विवृत्त्यात्मक सूत्र-रूप रचना कही जाती है और उसमें तथ्यों को विशेषरूप में प्रस्तुत किया जाता है। आशय यह है कि आचार्यवर यतिवृषभ के चूर्णिसूत्रों का महत्त्व 'कसायपाहुड़' की गाथाओं से किसी तरह कम नहीं है। गाथासूत्रों में जिन अनेक विषयों के संकेत उपलब्ध होते हैं, चूर्णिसूत्रों में उनका उद्घाटन मिलता है। अत: 'कसायपाहुड़' और 'चूर्णिसूत्र' दोनों ही आगमविषय की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

श्री यतिवृषभाचार्य का व्यक्तित्व आगम व्याख्याता की दृष्टि से अत्यधिक है। आपने आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकार इन पाँच उपक्रमों की दृष्टि से सूत्ररूप अर्थोद्घाटन किया है।

चूर्णिसूत्रकार आचार्यवर यतिवृषभ के व्यक्तित्व में निम्नलिखित विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं—

1. आत्मसाधक होने के साथ वे श्रुताराधक भी थे।

2. नंदिसूत्र के प्रमाण से वे कर्मप्रकृति के भी ज्ञाता सिद्ध होते थे।
3. आचार्य आर्यमंक्षु के शिष्य और आचार्य नागहस्ति के अंतेवासी थे।
4. आचार्यवर यतिवृषभ आठवें कर्मप्रवाद के ज्ञाता थे।
5. व्यक्तित्व की महानता की दृष्टि से आचार्य यतिवृषभ, आचार्य भूतबलि के समकक्ष थे।
6. चूर्णिसूत्रों में आचार्य यतिवृषभ ने सूत्रशैली को प्रतिबिंबित किया है।
7. परंपरा से प्रचलित ज्ञान को आत्मसात् कर चूर्णिसूत्रों की रचना की गई है।
8. आचार्य यतिवृषभ प्रचुरस्वसंवेदनस्वरूप रससंवेदनसह आगमवेत्ता तो थे ही, पर उन्होंने सभी परंपराओं में प्रचलित उपदेशशैली का परिज्ञान प्राप्त किया और अपनी प्रतिभा का चूर्णिसूत्रों में उपयोग किया।
9. आपने प्रवचन वात्सल्य से प्रेरित होकर आचार्य गुणधर के प्रवाहरूप से प्राप्त 'कसायपाहुड़' ग्रंथ पर चूर्णिसूत्र की रचना की थी।
10. विद्वानों के मतानुसार आपने 'कसायपाहुड़' के चूर्णिसूत्रों के उपरांत 'तिल्लोयपण्णति' नामक ग्रंथ की भी रचना की थी।
11. आपको महाकर्मप्रकृति प्राभृत का ज्ञान होने से आप आचार्यवर आर्यमंक्षु के शिष्य व आचार्य नागहस्ति के अंतेवासी शिष्य होने से आपकी प्राचीनता सिद्ध होती है।

अंत में, जैसे विषयासक्त पुरुषों को विषयासक्त पुरुषों की कथा रुचिपूर्वक सुनना बहुत ही पसंद आती है, उससे उनकी विषयरसिकता बलवत्तर होती है; उसी भाँति अध्यात्म के रुचिवंत जीवों को आगम-अध्यात्मरसिक आचार्यों की जीवनकथा पसंद पड़ती है। आगम-अध्यात्म में मस्त ऐसे आचार्य यतिवृषभ के जीवन से हम भी वैसे ही अध्यात्मरस को प्रमुदित करते हुए, अपनी अध्यात्म रुचि को संजायेंगे।

भगवान गुणधर आचार्य से शुरु होती परंपरा यहीं अर्थात् यतिवृषभ आचार्य तक पूर्ण हो जाती है।

आपका काल निर्णित करना मुश्किल है, फिर भी कुछ विद्वानों का मत है कि आपका काल ई.स. 143 से 173 के आसपास होना चाहिए।

आचार्यदेव यतिवृषभ भगवंत को कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव
श्री गृद्धपिच्छ उमास्वामी

जिनेन्द्र शासन की प्रचलित पट्टावलियों व शिलालेखों पर से जैन इतिहासकारों ने काफी उहापोह पश्चात् यह स्वीकार किया है, कि भगवान श्री कुंदकुंदाचार्यदेव के पट्टशिष्य के रूप में आसीन हुए, ऐसे भगवान उमास्वामी आचार्यदेव थे। आपने जिनागम उल्लिखित मोक्षमार्ग को सूत्ररूप में रचा होने से उसका नाम 'तत्त्वार्थसूत्र' है; जिसमें सात तत्त्वों का स्वरूप विस्तृतरूप से बताया गया है तथा उसमें मोक्षमार्ग का स्वरूप भी आ जाता होने से उसका अपरनाम 'मोक्षशास्त्र' है। यह शास्त्र इतना गंभीर है, कि उस पर विविध टीकाएँ रची गई हैं। उसमें श्री समंतभद्राचार्य रचित 'गंधहस्ति महाभाष्य', श्री पूज्यपादस्वामी की 'सर्वार्थसिद्धि', श्री अकलंकाचार्य रचित 'तत्त्वार्थराजवार्तिक' व श्री विद्यानंदि आचार्य रचित 'तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक' आदि प्रमुख हैं। इस तरह इस ग्रंथ की बहुधा टीकाएँ 'तत्त्वार्थ' के नाम से शुरु होने से इस ग्रंथ का प्राचीन नाम 'तत्त्वार्थसूत्र' रहा होगा, ऐसा कई इतिहासकारों का मंतव्य है।

यह ग्रंथ सूत्रों के रूप में रचित होने से इसे संक्षिप्त में 'सूत्रजी' भी कहा जाता है।

भगवान वादिराज मुनिराज के कथानुसार 'आकाश में उड़ने की इच्छा करनेवाले पक्षी, जिस प्रकार अपने पंखों का सहारा लेते हैं, उसी प्रकार मोक्षरूपी नगर को जाने के लिए भव्यलोग जिस मुनीश्वर का सहारा लेते हैं; उन महामना अगणित गुणों के भंडारस्वरूप गृद्धपिच्छ नामक मुनिमहाराज के लिए मेरे सविनय नमस्कार हैं।—इस भाँति गृद्धपिच्छ उमास्वामी जिनेन्द्रशासन के प्रसिद्ध आचार्य भगवंत थे।

प्राप्त शिलालेखों के अनुसार आप भगवान कुंदकुंद के वंश में उत्पन्न हुए थे, व प्राणीरक्षा हेतु गृद्धपिच्छों को धारण किया था। उन लेखों में आपका नाम उमास्वामी व उमास्वाति ऐसे दोनों रूपों में मिलता है। किन्हीं लेखों में आपका नाम 'गृद्धपिच्छ' के रूप में भी दिखाया गया है तथा आपके एक शिष्य का नाम 'बलाकपिच्छ' था, ऐसा भी प्रतीत होता था।

आपने 'द्रव्य' का स्वरूप बताते हुए तीन सूत्र दिए हैं। (1) सत् द्रव्य लक्षणम्। (2) उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्। (3) गुणपर्ययवद् द्रव्यं।

ये तीनों ही सूत्र आचार्य कुंदकुंद भगवान प्रणीत ग्रंथों से लिए हुए हैं। अत: सीधे आप आचार्य कुंदकुंद भगवान के शिष्य यथार्थतया प्रतीत होते हैं। आप बड़े विद्वान व वाचक आचार्य थे।

तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक टीका में इस भाँति का लिखा मिलता है कि "भगवान उमास्वामी से द्विपायन नामा भव्य ने पूछा—'भगवन्! आत्मा के लिए हितकारी क्या है? भव्य द्वारा ऐसा प्रश्न करने पर आचार्यवर्य ने मंगलपूर्वक उत्तर दिया, 'मोक्ष'। यह सुनकर द्विपायन ने पुन: पूछा—'उसका स्वरूप क्या है, और उसकी प्राप्ति का उपाय क्या है'? उत्तरस्वरूप आचार्यवर्य ने कहा, कि 'यद्यपि प्रवादिजन इसे अन्यथा प्रकार से मानते हैं, जैसे कोई श्रद्धानमात्र को मोक्षमार्ग मानते हैं, कोई ज्ञाननिरपेक्ष श्रद्धान व चारित्र को मोक्षमार्ग मानते हैं, परंतु जिस प्रकार औषधि के केवल ज्ञान, केवल श्रद्धान व केवल प्रयोग से रोग की निवृत्ति नहीं हो सकती है, उसी प्रकार केवल श्रद्धान, केवल ज्ञान व केवल चारित्र से मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। भव्य ने पूछा—तो फिर किस प्रकार उसकी प्राप्ति होती है? इसी के उत्तरस्वरूप आचार्य ने 'सम्यगदर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग:' यह सूत्र रचा है और इसके पश्चात् अन्य सूत्रों की रचना हुई है।

ऐसा ही कुछ आचार्यवर पूज्यपादस्वामीजी ने अपनी टीका 'सर्वार्थसिद्धि' में लिखा है, कि यह ग्रंथ आसन्नभव्य के प्रश्न के उत्तर में रचा गया है' व प्रश्न 'मोक्ष' संबंधित होने से व मोक्षमार्ग का उसमें वर्णन होने से, इस ग्रंथ का नाम 'मोक्षशास्त्र' भी प्रसिद्ध है।

इस ग्रंथ के बारे में विविध स्थानों पर विविधरूपेण ऐसी ही कुछ जनश्रुति आती है, वह इस प्रकार है कि सौराष्ट्रदेश में द्विपायन नामक एक श्रावक रहता था। उसने एक बार मोक्षमार्ग विषयक कोई शास्त्र बनाने का विचार किया और 'एक सूत्र रोज बनाकर ही भोजन करूँगा अन्यथा उपवास करूँगा'; ऐसा संकल्प लिया। उसी दिन उसने एक सूत्र बनाया 'दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग:'। विस्मरण होने के भय से उसने यह सूत्र घर के स्तंभ पर लिख लिया। अगले दिन

किसी कार्यवश वह बाहर चला गया और उसके घर एक मुनिराज आहारार्थ पधारे। लौटते समय मुनि की दृष्टि स्तंभ पर लिखे सूत्र पर पड़ी। उन्होंने चुपचाप 'सम्यक्' शब्द उस सूत्र के पहले लिख दिया और बिना किसी को कुछ कहे अपने स्थान को चले गए। श्रावक ने लौटने पर सूत्र में किए गए सुधार को देखा अपनी भूल स्वीकार की। उन मुनि को खोजकर उनसे ही विनयपूर्वक प्रार्थना की, कि वे इस ग्रंथ की रचना करें, क्योंकि उसमें स्वयं पूरा करने की योग्यता नहीं थी। बस उसकी प्रेरणा से ही मुनिराज ने 'तत्त्वार्थसूत्र' (मोक्षशास्त्र) की दस अध्यायों में रचना की। वे मुनिराज उमास्वामी के अतिरिक्त अन्य कोई न थे।

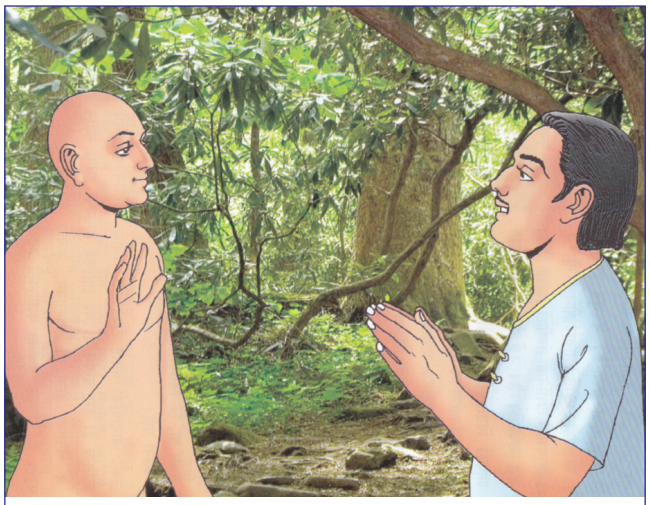

द्विपायन श्रावक द्वारा जंगल में आचार्य को ढूँढ़ निकालना व उनसे शास्त्र लिखने हेतु नम्रता से निवेदन

आपके इस ग्रंथ से प्रतिफलित होता है, कि आपने चारों अनुयोग को अपने हृदय में आत्मसात कर लिया था। इसलिए आपने अपने ग्रंथ में संक्षिप्त से द्रव्यानुयोग, करणानुयोग व चरणानुयोग का सार भर दिया है, कि जिससे उक्त तीन अनुयोग के दृष्टांतरूप प्रथमानुयोग भव्यजीवों को सहज ही यथार्थरूप से तात्त्विक दृष्टिकोणपूर्वक समझ में आ सके।

यह ग्रंथ जैन साहित्य का संस्कृत में लिखा गया सर्व प्रथम ग्रंथ है। यह 'सूत्र में' होने से कंठस्थ हो सके ऐसा ग्रंथ है। ये सूत्र दार्शनिक तत्त्वों की गंभीरता से

इतने भरपूर हैं कि इस ग्रंथ पर महान-महान आचार्यवरों ने गंभीर व दार्शनिक तत्त्वों में सभर टीकाएँ रची हैं, व कहीं-कहीं गंभीर दार्शनिक तथ्यों को बहुत ही खूबी से खोला गया है। यह ही इस ग्रंथ की अपने में बड़ी उपलब्धि है।

आपकी विद्वत्ता तो तत्त्वार्थसूत्र से ही स्पष्ट है कि जिसमें आपने अपने गुरु भगवान कुंदकुंदाचार्यदेव के पंचपरमागम आदि में द्योतित भावों को अत्यंत विद्वत्-निपुणता से आत्मसात् कर लिया है, ऐसा 'तत्त्वार्थसूत्र' के वाचक को ज्ञात हुए बिना नहीं रहता। इससे ही प्राचीनकाल में कई लोग 'तत्त्वार्थसूत्र' को भगवान कुंदकुंदाचार्य की रचना मानने लगे थे।

आपकी निरूपणशैली अत्यंत गंभीर थी। इस बारे में कहा जाता है कि आपने तत्त्वार्थसूत्र की रचना का मंगलाचरण जो कि 'मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेतारं कर्मभूभृताम्, ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये।' है; उसकी टीका आचार्य समंतभद्रजी ने 114 संस्कृत श्लोकों में रची, जिसका प्रथम शब्द 'देवागम' होने से 'देवागम स्तोत्र' के नाम से प्रसिद्ध है व उसमें 'आप्त' की मीमांसा (गहरी विचारणा) होने से 'आप्तमीमांसा' के नाम से भी प्रसिद्ध है। उसकी भगवान अकलंक आचार्य ने 800 श्लोक प्रमाण व उस पर भगवान विद्यानंदी आचार्य ने 8000 श्लोक प्रमाण टीका रची, जिसका नाम क्रमशः 'अष्टशती' व 'अष्टसहस्री' है। इस पर से यह स्पष्ट होता है कि 'तत्त्वार्थसूत्र' का मंगलाचरण ही इतना गंभीर था कि जिसके भावों को खोलने के लिए 8000 श्लोकप्रमाण तक की टीका विद्यानंदी आचार्य को करनी पड़ी।

उक्त आचार्यों की बनाई टीकाओं के अलावा भी जैन साहित्य में इस ग्रंथ की अनेकानेक टीकाएँ उपलब्ध हैं। इस ग्रंथ में दी गई तात्त्विक चिंतवना इतनी महान है, कि जैन संप्रदाय के दिगंबर व श्वेतांबर दोनों ही आम्नाय में, पूज्यता व प्रमाणता की दृष्टिकोण से इस ग्रंथ्थ का समान महत्त्व है। आपके सूत्रों का पश्चातवर्ती आचार्यों ने अपने शास्त्रों में भरपूर उपयोग किया है, इस पर से भी इस ग्रंथ की महानता व आचार्यदेव की महानता हृदय में उतरे बिना नहीं रहती। इतिहासकारों का मानना है कि आप ई.स. 179-243 के आचार्यवर थे।

तत्त्वार्थसूत्र के रचयिता आचार्यदेव उमास्वामी भगवंत को कोटि कोटि वंदन।

उपदेश सिद्धांत रत्नमाला

जिनधर्म विरल देखकर भी निर्मल श्रद्धान का होना

जह जह उट्ठइ धम्मो, जह जह दुट्ठाण होइ अइ उदओ।
सम्मादिट्ठि जियाणं, तह तह उल्लसइ सम्मत्तं ॥42॥

भावार्थ : इस निकृष्ट काल में जिनधर्म की अवनति और मिथ्यादृष्टियों के संपदा का उदय देखकर दृढ़ श्रद्धानी जीवों को कभी भी ऐसी भावना नहीं होती कि इन मिथ्यादृष्टियों का धर्म भी भला है किंतु उल्टे निर्मल श्रद्धान होता जाता है कि यह तो काल का दोष है, भगवान ने ऐसा ही कहा है।

इस काल के जीवों का पापोदय

जइ जंतु जणणि तुल्ले, अइ उदयं जं ण जिणमए होइ।
तं किट्ठ काल संभव, जियाणं अइ पाव माहप्पं ॥43॥

भावार्थ : इस निकृष्ट काल में भाग्यहीन जीव उत्पन्न होते हैं, उन्हें जिनधर्म की प्राप्ति अतिशय दुर्लभ है। अत: दिनों दिन जिनधर्म की विरलता दिखाई दे रही है, पर जिनधर्म किसी प्रकार से भी हीन नहीं है।

मिथ्यादृष्टि के लक्षण

धम्मम्मि जस्स माया, मिच्छत्त गाहा उस्सुत्ति णो संक ।
कुगुरु वि करइ सुगुरु, दिउसो वि सपाव पुण्णोत्ति ॥44॥

अर्थ :- जिन जीवों को धर्म के विषय में माया-छल है अर्थात् धर्म के किसी अंग का सेवन करते हैं तो उसमें अपनी ख्याति, लाभ-पूजादि का आशय रखखे हैं; गाथा-सूत्रों का अर्थ मिथ्या मानते हैं अर्थात् गाथा-सूत्रों का यथार्थ अभिप्राय तो जानते नहीं और उल्टे मिथ्या अर्थ ग्रहण करते हैं; उत्सूत्र अर्थात् सूत्र के अतिरिक्त बोलने में जिन्हें शंका नहीं होती, यद्वा-तद्वा कहते हैं; पक्षपातवश कुगुरु को सुगुरु बतलाते हैं तथा पाप रूप दिवस को पुण्य रूप मानते हैं—ऐसे जीव मिथ्यादृष्टि हैं।

प्रत्येक धर्मकार्य जिनाज्ञा प्रमाण ही कर

किच्चं पि धम्म किच्चं, पूयाममुहं जिणिंद आणाए।
भूअ मणुग्गह रहियं, आणा भंगादु दुहदायं ॥45॥

भावार्थ :- पूजनादि कार्यों का विधान जिस प्रकार से करने को जिनवाणी में कहा है उसी प्रमाण यत्नाचार सहित करना चाहिए, अपनी इच्छा के अनुसार यद्वा-तद्वा करना योग्य नहीं है।

मिथ्यात्व संसार में डुबाने का कारण है

क ट्ठं करोदि अप्पं, दमन्ति दव्वं चयंति धम्मत्थी।
इक्कं ण चयंति मिच्छत्तं, विसलवं जेण वुड्डंति॥46॥

भावार्थ :- कई जीव धर्म के इच्छुक होकर उपवासादि कार्य भी करते हैं परंतु सच्चे देव-गुरु-धर्म की व जीवादि तत्त्वों की श्रद्धा का कुछ ठीक ही नहीं है तो उनसे कहते हैं कि 'सम्यक्त्व के बिना ये समस्त कार्य यथार्थ फल देनेवाले नहीं हैं इसलिए प्रथम जिनवाणी के अनुसार श्रद्धान ठीक करना चाहिए'।

संगति से धर्मानुराग की वृद्धि-हानि

सुद्धविहि धम्मराओ, वड्ढई सुद्धाण संगमे सुअणे।
सोवि य असुद्ध संगे, णिउणाणि वि गलइ अणुदीहं॥47॥

भावार्थ :- जैसी संगति मिलती है वैसे ही गुण उत्पन्न होते हैं इसलिए अधर्मी पुरुषों की संगति छोड़कर धर्मात्मा पुरुषों की संगति करनी चाहिए क्योंकि सम्यक्त्व का मूल कारण यही है।

मिथ्यादृष्टियों के निकट मत बसो।

जो सेवइ सुद्ध गुरु, असुद्ध लोआण सो महासत्तू।
तम्हा ताण सयासे, बलरहिओ मा वसिज्जासु॥48॥

भावार्थ :- जिस क्षेत्र में मिथ्यादृष्टियों का बहुत जोर हो वहाँ धर्मात्मा पुरुषों को रहना उचित नहीं है, उन्हें तो जिनधर्मियों की संगति में ही रहना उचित है- यह उपदेश है।

धर्मात्मा कहाँ पराभव पाता है

समयविओ असमत्था, सुसमत्था जत्थ जिणमए अविओ।
तत्थ ण वड्ढइ धम्मो, पराहवं लहइ गुणरागी॥49॥

भावार्थ :- जहाँ कोई जिनवाणी का मर्म नहीं जानता हो वहाँ पर रहना उचित नहीं है।

अमार्गसेवी धनिक धर्मार्थी को पीड़ादायक

जं ण करइ अइ भावं, अमग्गसेवी समत्थओ धम्मे।
ता लद्धं अह कुज्जा, ता पीडइ सुद्ध धम्मत्थी॥50॥

अर्थ :- जो धनादि संपदा से युक्त होने पर भी धर्म में अत्यंत अनुराग नहीं करता, वह कुमार्गी जीव प्राप्त धन को निष्फल गंवाता है और शुद्ध धर्म के इच्छुक जीवों को पीड़ा देता है ॥50॥

मिथ्यावादी धर्मात्माओं का अनादर करते हैं

जइ सव्व सावयाणं, एगत्तं जंति मिच्छवायम्मि।
धमत्थि आण सुन्दर, ता कहण पराहवं कुज्जा॥51॥

अर्थ :- मिथ्या कथन में एकांत को प्राप्त जो मिथ्यावादी हैं, वे पुरुष समस्त श्रावक समूह में धर्म में स्थित धर्मात्माओं के प्रभाव का पराभव करने में उद्यमी होते हैं।

धर्मात्माओं के आश्रयदाता जयवंत हैं

तं जयइ पुरिसरयणं, सुगुणट्ठं हेमगिरि वर महग्घं।
जस्सासयम्मि सेवइ, सुविहि रउ सुद्ध जिणधम्मं॥52॥

भावार्थ :- जिनकी सहायता से जिनधर्मी धर्म का सेवन करें, वे पुरुष धन्य हैं, क्योंकि साधर्मियों से प्रीति करना है, सो सम्यक्त्व का अंग है।

धर्माधार देनेवाला अमूल्य है

सुरतरु चिंतामणिणो, अग्घं ण लहंति तस्स पुरिसस्स।
जो सुविहि रय जाणाणं, धम्माधारं सया देई॥53॥

अर्थ :- जो पुरुष शास्त्राभ्यास आदि भला आचरण करनेवाले जीवों को सदाकाल धर्म का आधार देता है और उसक निर्विघ्न शास्त्राभ्यास आदि होता रहे ऐसी सामग्री का मेल मिलाता है, उस पुरुष का मूल्यांकन कल्पवृक्ष अथवा चिंतामणि रत्न से भी नहीं हो सकता है अर्थात् वह पुरुष उनसे भी महान है।

सत्पुरुषों के गुणगान से कर्म गलते हैं

लज्जंति जाणि मोहं, सप्पुरिसाणि अय णाम गहणेण।
पुण तेसिं कित्तणाओ, अम्हाण गलंति कम्माइं॥54॥

भावार्थ :- जिनधर्मियों का नाम लेने से जीव का कल्याण होता है।

[साभार : उपदेश सिद्धांत रत्नमाला]

आनन्द की जन्मभूमि

मोक्ष का मार्ग शुद्ध रत्नत्रय है और वह स्वद्रव्य के आश्रित है। स्वद्रव्य आनंद का जन्मधाम है... उसमें दृष्टि करते ही शांतिरूप आनंदपर्याय का जन्म होता है। जिसको स्वद्रव्याश्रित सम्यग्दर्शन हुआ है, उसे निमित्तरूप वीतराग सर्वज्ञदेव की परमभक्ति सहज ही होती है। रे जीव! इस भवभय का भेदन करनेवाले भगवान के प्रति क्या तुझे भक्ति नहीं है? यदि नहीं है तो तू भव-समुद्र के बीच में मगरमच्छ के मुख में पड़ा है—वीतराग सर्वज्ञदेव की परमभक्ति और उनके द्वारा कहे हुए अंतर्मुख वीतरागमार्ग की उपासना, वही भवसमुद्र को पार करने का कारण है। अत: हे भव्य! भगवान के कहे हुए मार्ग को पहचानकर भक्तिपूर्वक उसका सेवन कर... जिससे तेरे भव का नाश हो और तुझे मोक्षसुख प्राप्त हो।

अंतर्मुख होकर जिसने अपने अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव किया है, ऐसा धर्मी जीव जानता है कि अहो! मेरा जो अतीन्द्रिय आनंद, उसका जन्मधाम मेरा आत्मा है। मेरा सहज आत्मतत्त्व स्वयं ही आनंद की उत्पत्ति का स्थान है।

अंतर में ऐसे आनंदधाम आत्मा की श्रद्धा से सम्यग्दर्शन हुआ है। धर्मी ने अंतर में जब ऐसा अपना आनंद देखा, इसलिए उसके अतिरिक्त किसी अन्य की उसे अभिलाषा नहीं होती। निज परमात्मा के समसुख का ही वह अभिलाषी होता है; उसका स्वाद चख लिया है, इसलिए अंतर में 'आनंदपुत्र' का अवतार हुआ है। जैसे समुद्र स्वयं अपने में ही डोलता है, वैसे ही धर्मी स्वयं अपने आनंद समुद्र में डोलता है अर्थात् आनन्द का अनुभव करता है। सम्यक्त्व के साथ ही ऐसा आनंद होता है। इस प्रकार 'सम्यक्त्व' और 'आनंद' दोनों सदा साथ ही रहते हैं।

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-7 (नवंबर-1971), वर्ष-27]

समाचार-दर्शन

दशलक्षण पर्व समाचार

तीर्थधाम मङ्गलायतन में पण्डितश्री हितेश चोवटिया दशलक्षण पर्व पर पधारे, जिनके सान्निध्य में पर्व आनन्दपूर्वक पर्व मनाया गया। प्रात: काल जिनेन्द्रपूजन के पश्चात् पूज्य गुरुदेवश्री का सीडी प्रवचन एवं उसी के ऊपर स्वाध्याय हुआ। दोपहर काल में पुन: पूज्य गुरुदेवश्री का सीडी प्रवचन एवं उस पर स्वाध्याय हुआ। रात्रिकाल में बहिनश्री की तत्त्वचर्चा के पश्चात् चोवटियाजी द्वारा आध्यात्मिक चर्चा की गयी। मङ्गलार्थियों द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किये गये।

इस पर्व के अवसर पर तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा अष्टपाहुड़ एवं पंचास्तिकाय पर तैयार की गई, डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल एवं श्री रतनचन्द भारिल्ल कृत पद्यानुवाद की सीडियों का भव्य विमोचन का कार्यक्रम हुआ। इस अवसर पर स्थानीय विद्वान पण्डित अशोक लुहाड़ियाजी एवं पण्डित सुधीर शास्त्रीजी का भी धर्म लाभ प्राप्त हुआ।

दशलक्षण पर्व के इन दिनों में बाहर से करीब 125 साधर्मियों का आगमन हुआ। करीब 250 लोगों ने धर्म का लाभ प्राप्त किया।

चैतन्यधाम (अहमदाबाद) में पण्डित सचिनजी मंगलायतन द्वारा दशलक्षण पर्व पर धर्मप्रभावना की गयी। प्रात:काल जिनेन्द्र पूजन पण्डित सचिनजी अहमदाबाद द्वारा करायी गयी। पूज्य गुरुदेवश्री के सीडी प्रवचन के बाद पण्डित सचिनजी मंगलायतन द्वारा समयसार पर स्वाध्याय कराया गया। दोपहरकाल में तत्त्वार्थसूत्र एवं रात्रि में मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ पर स्वाध्याय कराया गया। विद्यानिकेतन के चैतन्यार्थियों द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किये गये। इस पर्व के अवसर पर विद्यार्थियोंसहित करीब 500 साधर्मियों ने धर्म लाभ प्राप्त किया।

गौरझामर में दशलक्षण पर्व पर डॉ० सचिन्द्र जैन मंगलायतन द्वारा धर्म प्रभावना की गयी। प्रात:काल जिनेन्द्र पूजन के पश्चात् प्रवचनसार ग्रन्थ पर स्वाध्याय हुआ। दोपहर काल में पंच भाव पर कक्षा एवं रात्रि में दशधर्मों पर व्याख्यान हुआ। स्थानीय समाज द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किये गये। पर्व के मध्य में गौरझामर में श्री शांतिनाथ जिनालय में आगामी प्रतिष्ठा महोत्सव की रूपरेखा प्रस्तुत की गयी। ध्यान

रहे यह प्रतिष्ठा महोत्सव 19 दिसम्बर से 24 दिसम्बर 2018 तक पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट एवं तीर्थधाम मङ्गलायतन के निर्देशन में सम्पन्न होगी।

शिकागो यू.एस.ए. में दशलक्षण पर्व पर संजय शास्त्री मङ्गलायतन द्वारा धर्म प्रभावना

शिकागो : दशलक्षण पर्व के पावन अवसर पर पण्डित संजय शास्त्री शिकागो, यूएसए जैन सेन्टर में पधारे जहाँ अद्भुत धर्म प्रभावना हुई। प्रात:काल जिनेन्द्र अभिषेक के पश्चात् श्री दशलक्षण विधान एवं नित्यनियम पूजन के मध्य प्रत्येक दिन एक-एक धर्म का अर्थ किया गया। पूजन के पश्चात् 47 शक्तियों पर स्वाध्याय एवं रात्रिकाल में बच्चों के लिए वैराग्यमय कथाएँ एवं मनुष्यपर्याय की दुर्लभता, सदाचार संस्कार, कण-कण की स्वतन्त्रता, पुण्य-पाप की विचित्रता, मुनिधर्म, श्रावकधर्म, चार अभाव, आत्मानुभूति, दृष्टि का विषय, वात्सल्य पर्व आदि विषयों पर व्याख्यान हुआ। दोनों समय साधर्मियों द्वारा जिज्ञासा समाधान भी हुआ।

शनिवार और रविवार को 170 तीर्थंकर विधान का दोपहर काल में भव्य आयोजन हुआ। सभी कार्यक्रमों में सम्पूर्ण जैन समाज ने भेदभाव छोड़कर धर्म का लाभ लिया। अन्तिम दिन शिकागो जैन समाज ने संजयजी को प्रतिवर्ष शिकागो आने का आमन्त्रण प्रदान किया।

स्वानुभव की किरणें

स्वानुभवरूपी सूर्य की किरणों द्वारा ही मोक्षमार्ग दिखाई देता है। जहाँ स्वानुभव की किरणों का प्रकाश नहीं है, वहाँ मोक्षमार्ग दिखाई नहीं देता। राग तो अंधकारमय बंधभाव है, उसके द्वारा मोक्षमार्ग की साधना कहाँ से होगी ? अरे, बंधभाव और मोक्षभाव के बीच भी जिसे विवेक नहीं है, उसे शुद्धात्मा का वीतराग संवेदन कहाँ से होगा ? और स्वानुभव की किरणें फूटे बिना मोक्षमार्ग का प्रकाश कहाँ से प्रगट होगा ? अज्ञानी के स्वानुभव का कण भी नहीं है तो फिर मोक्षमार्ग कैसा ? स्वानुभव के बिना जो भी भाव करे, वे सब भाव बंधमार्ग में हैं, वे कोई भाव मोक्षमार्ग में नहीं आते, और उनसे मोक्षमार्ग की साधना नहीं होती। स्वानुभव का सूर्य उदित हो, तब मोक्षमार्ग सच्चा।

शिकागो यू.एस.ए. में दशलक्षण पर्व की झलकियाँ

प्रकाशन तिथि - 14 अक्टूबर 2018 पोस्ट प्रेषण तिथि - 16-18 अक्टूबर 2018
Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा मङ्गलायतन मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com